# हिमालय है तो हम हैं*

शेखर पाठक**

**हिमालय सिर्फ भौगोलिक, भूगर्भिक और जैविक विविधता; पर्वतों, झीलों और नदियों का ही नहीं बल्कि विविध समाज-संस्कृतियों और शिकारी-संग्राहक से पशुपालन, खेती और आधुनिक व्यापार तक फैली आर्थिकी के विविध आयामों का घर भी है। इस पर्वतमाला ने एक ऐसी पारिस्थितिकी को विकसित किया है जिस पर दक्षिण एशिया की प्रकृति और समाजों का अस्तित्व टिका है। यह पर्वतमाला उत्तरी बर्मा, अरुणाचल और भूटान की अत्यन्त हरी-भरी सदाबहार पहाड़ियों को सूखे, भूरे और ठंडे रेगिस्तानी लद्दाख-कराकोरम से जोड़ती है तो सिंधु-गंगा-ब्रह्मपुत्र के मैदान को तिब्बत के पठार से।**

**पूर्व से पश्चिम तक यह पर्वतमाला भारतीय उप महाद्वीप के उत्तर में एक चाप की तरह स्थापित है, जिसे सबसे पहले कवि कालिदास ने बखाना और फिर भूगर्भविदों ने प्रमाणिकता दी। यह पर्वत अत्यन्त गतिशील है। न सिर्फ़ इसकी मिट्टी और पानी नीचे मैदानों में उर्वरता और जीवन बिखेर कर उस क्षेत्र को ही रूपान्तरित कर देता है बल्कि इसमें बसने वाले समुदाय और उनकी संस्कृतियाँ, जो सहस्राब्दियों में यहाँ आईं, भी यहाँ से अनेक दिशाओं में चलायमान रही हैं।**

हिमालय से हमारा अस्तित्व बहुत गहनता से जुड़ा है। इसका भूगर्भ हमें महाद्वीपों के सरकने, 'टैथिस सागर' के गुम जाने या अब भी स्वयं के ऊपर उठते चले जाने को बताता है या इसकी उस विकट प्रकृति को, जो अपने भीतर हलचल और भूकंप छिपाये हुए है। इसका

* प्रस्तुत आलेख रवीन्द्रनाथ टैगोर चौथे स्मृति व्याख्यान 2011 के अवसर पर श्री शेखर पाठक द्वारा दिये गए संभाषण का लिखित रूप है। यह संभाषण 4 फरवरी 2011 को क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर में दिया गया और इसे एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है।

** भूतपूर्व प्रोफ़ेसर, इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

भूगोल हमें शिखर, दर्रे, ग्लेशियर (गल), हिमोढ़ (मोरेन), नदी, गोर्ज या संगम आदि प्रकृति के कितने ही रूपों का दिग्दर्शन कराता है। इसके ग्लेशियरों और नदियों को 21वीं सदी के लिए सुरक्षित 'पानी की मीनारें' कहा गया है। इसके उच्च पर्वत मानसून को रोककर बरसने को मजबूर कर देते हैं। यह पर्वत दक्षिण एशिया की जलवायु तथा मौसमों का निर्माता और नियंत्रक है।

इसकी वनस्पतियाँ और जंगल सतत बढ़ रहे कार्बन को धारण करने वाले फेफेड़े हैं। इसकी वनस्पतियाँ कितनी ही तरह की दवाओं का आधार हैं। इसकी वन्यता ने हज़ारों जीव-वनस्पतियों को अभिव्यक्ति दी है, जिनमें चिड़िया, मछली, तितली से यारसागम्बू तक शामिल हैं। इसकी सुंदरता और एकान्तिकता ने अनगिनत को प्रेरित/प्रभावित किया, जिनमें इस दुनिया के कुछ महानतम लोग भी हैं। इसका 'कच्चा माल' खनिज, धातु, तेल, लकड़ी तथा दवा उद्योगों का आधार है। इसकी वन्यता प्राकृतिक/आध्यात्मिक शक्तियों का मिलन स्थल है और वह संस्कृति के साथ मिलकर आज भी तीर्थयात्रियों और पर्यटकों के लिए मुख्य आकर्षण है। ऊँचे हिमशिखर, दर्रे और बर्फ़ीले मैदान दुस्साहसियों और अन्वेषकों को आमंत्रण देते हैं।

उक्त सब कारणों से बहुत से देशों और क्षेत्रों में फैली हिमालय पर्वतमाला में तेज़ी से घुसपैठ हो रही है। आज इसके संसाधनों–जमीन (मिट्टी, खनिज, धातु तथा हाइड्रोकार्बन), जंगल, जल और वन्यता की लूट हो रही है। इन्हें तरह-तरह से नष्ट किया जा रहा है। ये संसाधन उस गति से नष्ट किये जा रहे हैं जिस गति से उन्हें पुनर्संस्थापित/पुनर्जनित नहीं किया जा सकता है। जल विद्युत परियोजनाएँ, खनन, जैव विविधता पर दबाव, पर्वतवासियों के प्रवास में जाने और अन्ततः भूमण्डलीकरण, निजीकरण, उपभोक्तावाद और जलवायु परिवर्तन ऐसे मामले हैं जिनकी ठीक से पड़ताल की जानी ज़रूरी है। सुरक्षित 'पानी की मीनारें' कहा गया है। इसके उच्च पर्वत मानसून को रोककर बरसने को मजबूर कर देते हैं। यह पर्वत दक्षिण एशिया की जलवायु तथा मौसमों का निर्माता और नियंत्रक है।

इस पृथ्वी का सर्वोच्च और अत्यन्त पवित्र यह पर्वत हमारी राजनीतिक अर्थव्यवस्था तथा विकास के अधूरे मॉडल द्वारा अपहृत कर लिया गया है। पर्वतवासियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपने आत्मसम्मान और अपने क्षेत्र में रहने के अधिकार को बनाये रखने की है। हम अभी इस तरह की 'समझ' का विकास नहीं कर पाये हैं जो इस युवा और नाजुक पर्वतमाला की 'संवेदनशीलता' को समझ सकें।

आज इस तथ्य को समझने की ज़रूरत है कि यदि हिमालय अपनी जगह कायम रहे और उसकी हिफ़ाज़त होती रहे तो वह हमारे जीवन और संस्कृति को भी आधार देगा। तभी हिमालयवासी जीवित रहेंगे। इसी तरह पक्षी

और जानवर भी। बिना हिमालय के न कविता संभव है और न ही हम प्रकृति की द्वंद्वात्मकता को समझ सकते हैं। इसके बिना हम अपने बारे में नहीं सोच सकते। अतः यदि आज अनेक लोग 'हिमालय है तो हम हैं' कह रहे हैं और उनका आक्रोश अनेक प्रकार के प्रतिरोधों के माध्यम से प्रकट हो रहा है तो यह स्थिति को समझने का और उसे ठीक करने का मौका है।

हिमालय कवि-चिंतक रवीन्द्रनाथ टैगोर को भी प्रेरणा देता रहा। उन्होंने हिमालय के विविध क्षेत्रों की यात्राएँ कीं। हिमालय में अपनी अनेक बेहतरीन कविताएँ और कहानियाँ लिखीं। कवि गुरु के 150वें साल में 'जहाँ मस्तिष्क निडर हो' से प्रेरित होते हुए हिमालय के चिन्ताजनक परिदृश्य को समझने तथा इसके स्वास्थ्य तथा सामंजस्य से जुड़े सवालों के उत्तर ढूँढ़ने का जतन करना चाहिए।[1]

इस व्याख्यान के माध्यम से भारतीय उपमहाद्वीप के लिए हिमालय पर्वत की प्राकृतिक-पारिस्थितिक, सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक-आध्यात्मिक और भू-राजनीतिक महत्ता तथा केंद्रीयता को भूगोल, संस्कृति, संसाधन तथा प्रतिरोध के मार्फत समझने का प्रयास होगा।

## हिमालय – निर्मिति और निर्माता

हिमालय लगभग 5-6 करोड़ साल पहले अफ्रीका से खिसककर आए और एशिया को धक्का मारने वाले भारतीय उपमहाद्वीप के कारण कैसे जन्मा यदि इस लंबी भूगर्भिक कहानी में न भी जाएँ तो भी उस प्रक्रिया के सबसे बड़े परिणाम हिमालय को अफगानिस्तान से उत्तरी म्यांमार तक पसरे हुए एक अत्यन्त जटिल भूगर्भ और भूगोल के रूप में देखने से आज की बात शुरू करते हैं। हिमालय के इस विस्तार में अफगानिस्तान, नेपाल तथा भूटान जैसे देश; उत्तरी क्षेत्र (पाकिस्तान), जम्मू-कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखंड, सिक्किम तथा पूर्वोत्तर जैसे प्रांत (भारत), उत्तर पश्चिमी म्यांमार (बर्मा) तथा दार्जिलिंग जैसे क्षेत्र हैं। इसी में 'चीन के स्वायत्त प्रान्त' बना दिए गए पुराने 'तिब्बत देश' का बड़ा हिस्सा भी आता है।[2]

महाकवि कालिदास का दो सागरों को जोड़ने वाला 'देवात्मा' और 'पृथ्वी का 'मानदण्ड' या अल्लामा इक़बाल का 'फसीले-किश्वरे-हिन्दोस्तां'—दरअसल एक जीवित शरीर की रीढ़ है, जो सिन्धु-गंगा-ब्रह्मपुत्र के मैदान से उत्तर को तरह-तरह के पर्वत रूपों में उठता चला जाता है। ये नाना रूप हिमालय की पसलियों की तरह हैं। इन पर हिमालय की सैकड़ों घाटियों में तमाम लघु समाज-संस्कृतियाँ उपस्थित हैं। ये क्षेत्र खनिजों तथा जैव विविधता के असाधारण भंडार हैं और तीन बड़े जल प्रवाह तंत्रों के स्रोत प्रदेश भी।

यह सवाल रोचक है कि जहाँ आज हिमालय है वहाँ पहले क्या था? यदि वहाँ टैथिस सागर था तो उससे पहले क्या था? क्या यह पृथ्वी की गतिशीलता की एक स्वाभाविक परिणति थी? क्या पृथ्वी अपना रूप बदलती

रही है? यह कहानी हमें अफ्रीका से गौंडवाना लैन्ड के एक हिस्से के वर्तमान भारतीय उपमहाद्वीप तक खिसक आने तक तो ले ही जाती है।

आज चाहे हिमालय को समस्त मानवजाति की प्राकृतिक-सांस्कृतिक विरासत माना जाने लगा है पर विभिन्न एशियाई समाजों के चेतन-अवचेतन में यह पर्वत सदियों से निरंतर धड़कता रहा है। यह धड़कन आसमान से बात करते बर्फीले तथा गैर-बर्फीले पर्वतों के सिलसिले की है, जो सिंधु-गंगा-ब्रह्मपुत्र के मैदान के उत्तरी छोर से तिब्बत तक फैले विस्तृत भू-भाग का हिस्सा है।

यह धड़कन ग्लेशियरों में पसरे बर्फ़ की है। अत्यंत कमजोर से अत्यंत मजबूत तक तरह-तरह की चट्टानों की, उन पर विकसित आड़े-तिरछे भ्रंशों (इनमें एम.सी.टी., एम.बी.टी. तथा टी.एच.एफ. आदि भ्रंश तो अब प्रसिद्ध हो गए हैं) तथा भूगर्भीय ऊर्जा (जिसकी मुख्य अभिव्यक्ति भूकंप, ज्वालामुखी, भूस्खलन तथा गर्म पानी के स्रोत आदि हैं) की है। तालों, जल धाराओं, वनस्पतियों और जीवों की है। उन मनुष्यों की है जो सैकड़ों समुदायों, समाजों और संस्कृतियों के निर्माता और प्रतिनिधि हैं। अनेक धर्म और आस्थाएँ यहाँ उर्वरता पा सकी हैं और पुराण कथाओं तथा सपनों के लिए हिमालय सबसे उपयुक्त क्षेत्र रहा है। मनुष्य के विविध आस्था-विश्वासों और राज्य-अर्थव्यवस्थाओं में बँधने से पहले यह धड़कन एक अत्यंत गतिशील भू-गर्भ और एक ऊपर को उठते और नीचे को बहते भूगोल की है।

एशियाई समाजों का हिमालय से नाता बहुत पुराना और गहरा है। इसका खुश या उदास, हरा या बदरंग चेहरा और मनमोहक या रौद्र रूप विविध समुदाय सदियों से देखते आ रहे हैं। कम ही लोगों को यह अहसास है कि हिमालय गर्मियों या शरद में संपन्न लोगों का ऐशगाह या तीर्थयात्रियों का मोक्ष स्थल या पर्वतारोहियों का विजय क्षेत्र या विभिन्न नदियों का मायका भर नहीं, वरन् एक ऐसा भू-भाग भी है, जहाँ अत्यंत विविधता भरी प्रकृति के बीच अनेक संस्कृतियाँ और समाज एक साथ मौजूद हैं और जहाँ का आम आदमी अपने परिवेश और परंपरा की हिफाज़त और अपनी ज़िन्दगी की बेहतरी के लिए चिंतित है। यह मनुष्यों की भूमि पहले है, देवभूमि बाद में, क्योंकि मनुष्यों ने ही अपने विश्वासों तथा देवी-देवताओं को यहाँ की प्रकृति में स्थापित किया। हिमालय के सम्मोहक आकर्षण के कारण अकसर यह बात अनदेखी रहती आई है।[3]

महान, ऊँचा, पुराण कथाओं और आज के भू-राजनीतिक यथार्थ में दबदबे वाला हिमालय एक युवा और कमज़ोर पहाड़ है। इसके भीतर की बात अब भूगर्भवेत्ता जानने लगे हैं। हिमालय के धीरे-धीरे उठते चले जाने की प्रक्रिया आज भी जारी है (2 सेमी. प्रति साल की गति से) और भारतीय प्लेट लगातार तिब्बती (यूरेशियाई) प्लेट को धक्का मार रही

है। इससे न सिर्फ़ हिमालय ऊपर उठ रहा है बल्कि अनेक बार इससे भूंकप तथा भूस्खलन भी जन्म ले लेते हैं।[4]

हिमालय के आर-पार आड़े-तिरछे हज़ारों भ्रंश हैं, जो हिमालय की बेचैनी का राज़ बताते हैं।[5] हिमालय के भीतर भूगर्भिक हलचल से जनित आक्रोश है। बाहर की सफ़ेदी, हरियाली या नीलिमा भीतर का हाल ठीक से बयान नहीं कर पाती हैं। इधर इसकी बाहरी हरियाली भी घटी है और हज़ारों भू-स्खलनों, भू-कटानों की खरोंचें इसके चेहरे पर नज़र आती हैं। हिन्दुकुश से एकदम पूर्वी छोर तक हिमालय के ग्लेशियरों में स्थित तालों का ध्वस्त होना (ग्लेशियरों का तेज़ी से पिघलना, नदियों का उफनना) घाटियों को काट-खरोंच कर बहा ले जाना; हज़ारों टन मिट्टी का स्थानांतरित होना और फिर भारतीय उप महाद्वीप के बहुत बड़े उत्तरी भाग को ही डुबा देना यह कम या अधिक हर साल की नियति हो चली है। इस नियति का एक हिस्सा नैसर्गिक प्रक्रिया है और दूसरा मनुष्यों द्वारा रचा हुआ। यह हिमालय की गतिशीलता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है तो इसे त्वरित और बहुगुणित करने में हमारी राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्थाओं, जिनसे निर्मम आधुनिक सभ्यता का निर्माण हुआ है, का असाधारण योगदान रहा है। इस सबके बावजूद हिमालय का प्राकृतिक सौंदर्य कायम है और उक्त प्रक्रियाएँ अस्वाभाविक नहीं है। हिमालय आत्म चिकित्सा जानता है और उसकी वनस्पतियाँ अपनी मिट्टी को रोकने की भरपूर कोशिश करती हैं। यह हिमालयी भूगोल तराई-भाबर-दून-शिवालिक-दुआर (भूटान का भाबर) से उठता है, ठहरता-सा बढ़ता है और उच्चतम बिंदु तक जाकर तिब्बत के पठार की ओर उतर जाता है। इस सर्वोच्च हिस्से में ही तमाम शिखरों के अलावा वे दर्रे हैं[6] जो भारत-तिब्बत के बीच सदियों से आवागमन के मार्ग रहे हैं और जिनमें एक घुमन्तू तथा व्यापारी संस्कृति के गीत और कारवाँ ही नहीं (कैलास-मानसरोवर, ल्हासा सहित तिब्बत) के अनेक स्थानों को जाने वाले तीर्थयात्री भी चलते थे। मुख्य रेशम मार्ग से हिन्दुस्तान को जोड़ने वाले मार्ग यहाँ से गुज़रते थे।

पहाड़ों के सिलसिलों को तमाम नदियों ने अपने जल ग्रहण क्षेत्रों में बाँट दिया था और एक ही धार से निकले पानी की मुलाकात कहीं दूर मैदानों में होती थी। भौगोलिक जटिलता, प्रतिकूलता और सामान्यता ने उसी तरह की जीवन पद्धतियों, खानपान-पहनावा और नृत्य-गीतों को जन्म दिया, जो उनके लिए ज़रूरी और संभव थे। भूगर्भ कैसे भूगोल और भूगोल कैसे खान-पान, गान, नृत्य और पहनावे को प्रभावित करता है, यह हिमालय में सरलता से समझा जा सकता है। यह भूगोल ही उन समाजों के मान-सम्मान की रचना करता था, जो यहाँ भाग कर या विकसित होकर ठहरना सीखे थे।

हिमालय की बर्फ़, मिट्टी, चट्टान और धरातल या ढाल के स्वरूप पर उसकी

वनस्पतियों की रंगत निर्भर है और यही सब तालाबों तथा नदियों के मिजाज़ को बनाते और बताते हैं। टैथिस हिमालय में जब नदियाँ ग्लेशियरों से जन्म लेती हैं तो विश्वास नहीं होता कि वे जन्मजात आत्मनिर्भर प्राकृतिक प्रणालियाँ हैं। यह क्षेत्र उन्हें आक्रामक नहीं बनने देता। यह हिमालयी नदी का बचपन है। यहीं सुन सकते हैं आप किसी नदी की किलकिलाहट या कि उसका तुतलाना।

जैसे ही भूगर्भविदों का 'सेन्ट्रल क्रिस्टलाइन क्षेत्र' आता है तो चट्टानों तथा शिलाओं की चुनौती के कारण नदियाँ एकाएक युवा हो जाती हैं–गुस्सैल तथा आक्रामक। पत्थर और पानी का यह रण हिमालय के आर-पार देखा जा सकता है। यह नदी की सबसे अधिक चुनौती भरी उम्र है। अनेक बार लुढ़कते पहाड़ नदी को रोकते हैं और उसे झील बना देना चाहते हैं। पर नदी झील होने से इंकार करती हुई या बन गई झील को तोड़ते हुए आगे बढ़ जाती है। नदी के इस गुस्से को मनुष्य बाढ़ कहता है और पहाड़ द्वारा भूगर्भिक कारणों से टूट कर नदी को रोकने की कोशिश को भूस्खलन। कुछ आगे नदियाँ व्यवस्थित होने लगती हैं और विभिन्न संगमों में अपनी सहायक नदियों से मिलती हैं और ऐसे स्थान अपने किनारों में रच जाती हैं, जहाँ मनुष्य बस सके और खेती कर सके। इन्हीं जगहों पर हिमालय की बसासतें विकसित हुईं।

मैदानों में दरअसल हम एक बूढ़ी नदी को देखते हैं। पस्त और पहाड़ों में स्थित मायके की स्मृति में दुबलाई हुई। ऊपर से मनुष्य उसमें औद्योगिक और नगरीय कचरा डालता है। नहरें भी निकाल लेता है। यमुनोत्री में खनखनाती नदी को ताजमहल के पिछवाड़े देखकर विश्वास ही नहीं होता कि यह वही कालिन्दी है जिसका बचपन बर्फ़ तथा गर्म पानी के स्रोतों के बीच बीता है (साल 2010 में अवश्य यमुना ने यह सिद्ध किया कि वह नाला नहीं नदी है) और पश्चिमी तिब्बत में स्थित राकसताल के एक कोने से जन्मी सतलुज जब हिमाचल-पंजाब में मनुष्य द्वारा बाँध दी जाती है तो लगता है कि मनुष्य नदियों को भी दास बनाना चाहता है। गुरला मान्धाता पर्वत के पश्चिमी स्कन्द से निकली करनाली (जो महाकाली से मिलकर घाघरा बन जाती है और अयोध्या में सरयू कहलाती है), जिसने ताकलाकोट में उन्नीसवीं सदी में डोगरा सेनापति जोराबर सिंह की जीत तथा फिर हार और बीसवीं सदी में लाल सेना द्वारा किया गया मठों का ध्वंस देखा था, ही हमारे एकदम करीब के समय में अयोध्या में मस्जिद को टूटते हुए देख रही थी।

पाकिस्तान में मेहरान बन गई सिन्धु, जो हिन्दुस्तान के नाम में समाहित है, तिब्बत और लद्दाख का पैगाम अरब सागर तक ले जाती है। सिन्धु न सिर्फ़ पंचनदियों-सतलुज, रावी, चिनाब, झेलम तथा स्वयं-की मुखिया है बल्कि नुब्रा, स्योक, काबुल, चित्राल तथा गिलगित नदियों का पानी भी समेटती है। ये ही वे नदियाँ थीं जिनके किनारों पर उस मानवता

के प्रारंभिक कारवाँ रुके होंगे, जिनसे भारतीय समाज का निर्माण हुआ होगा। आज ये सभी नदियाँ दो या तीन राष्ट्रों में बहती हैं और अंततः इनका पानी अरब सागर में जाता है। इस बार लद्दाख और पाकिस्तान में इन नदियों द्वारा जो कहर ढाया गया वह इनके बदलते मिजाज़ को बताता है।

तिब्बत-नेपाल से भारत में आने वाली कोसी नदी का पिछली अनेक सदियों से अपना रास्ता बदलते रहना भी भूगर्भ-भूगोल तथा मनुष्य के हस्तक्षेप की करामात है। यह बहुतों को आश्चर्यजनक लग सकता है कि चोमोलंगमा शिखर (एवरेस्ट) के उत्तर-पूर्वी ग्लेशियरों, जो कि तिब्बत में पड़ते हैं और जहाँ मैलोरी तथा इरवीन 1924 में पर्वतारोहण करते हुए दफ़न हो गए थे, का पानी अरुण नदी के ज़रिए कोसी में ही आता है।

उधर दो ऐसी नदियाँ भी हैं जो पुत्र मानी जाती हैं। भारतीय नदियों में ब्रह्मा के पुत्र के अलावा रंगित को पुरुष प्रवाह (नद) कहा जाता है। ब्रह्मपुत्र, जो मानसरोवर तथा कैलास पर्वत के बहुत करीब स्थित मरियम ला के पूर्व से जन्म लेती है और जिसका 10-11 हज़ार फीट की ऊँचाई पर बहता हुआ तिब्बती प्रवाह हालांकि असम में आकर नियंत्रित होता है, पर जिसे अभी भी बाँधा नहीं जा सका है। मनुष्य को ब्रह्मपुत्र के ऊपर पुल बनाने में ही हज़ारों साल लग गए पर अब चीन और भारत ने उसमें या उसकी सहायकों में बाँध बनाने की विवादास्पद शुरुआत कर दी है। रंगित पश्चिमी सिक्किम से जन्म लेकर तीस्ता में विलीन हो जाती है और तीस्ता स्वयं ब्रह्मपुत्र में।

गंगा का तंत्र इन सबमें सबसे बड़ा है और कई हिन्दुस्तानियों को आज भी विश्वास नहीं होता कि कालिदास के उज्जैन से जन्म ले रही शिप्रा अंततः यमुना के मार्फत गंगा में ही पहुँचती है, तो तिब्बत का पानी भी करनाली तथा अरुण आदि के मार्फत इसमें आता है। यही रिश्ता पद्मा या मेघना का हिमालय और हिमालय पार से है। गंगा के साथ जुड़ी मिथक गाथा उसे माँ बना देती है। हालांकि माँ तो हर नदी है। माँ से कम तो कोई नदी हो ही नहीं सकती और माँ के साथ ज़्यादती करने में मनुष्य माहिर है। गंगा माता के साथ हमने क्या जो नहीं किया है? गनीमत है कि यह अब भी बहती है! हमारी चेतना इतनी तंग हो गई है कि हम गोमुख से उत्तरकाशी तक ही पवित्रता ढूँढ़ पा रहे हैं।[7]

इन नदियों तथा उनकी तमाम सहायकों के दोनों ओर अत्यंत व्यक्तिवादी, आत्मकेंद्रित और मनुष्य को कवि, चित्रकार, दार्शनिक तथा योगी बना देने वाले उच्च शिखर हैं जो आपस में बात कर सकते हैं और मनुष्य से भी। वे हमारे मुकाबले आकाश के करीब हैं। एक कवि इसे हिमालय की गहराई कहता है तो दूसरा शायर आसमान द्वारा झुककर चूमी जा रही इस ऊँचाई को देखता है। यही विशिष्टता हिमालय को दुनिया के और पहाड़ों से अलग कर देती है। नंगा पर्वत, के-2, नुनकुन, किन्नर कैलास, स्वर्गारोहिणी, बंदरपूँछ, केदारनाथ, चौखम्बा,

भगीरथ, शिवलिंग, नंदादेवी, नंदाकोट, पंचचूली, छोटा कैलास, आपी, नाम्पा, सैपोल, धौलागिरी, गणेश हिमाल, चोओयू, ल्होत्से, चोमोलंगमा यानी सागरमाथा यानी एवरेस्ट, चोमोलोंजो, मकालू, कंचनजंगा, चुमलहारी, नामचे बारवा और उससे भी आगे तक उच्च शिखरों का यह सिलसिला है।[8]

हर शिखर के कई चेहरे हैं जिनके साथ पसरे ग्लेशियरों से तमाम नदियाँ जन्म लेती हैं। फिर नीचे उतरती, मैदानों में पसरती और सागर में विलीन हो जाती हैं। अंततः मानसून, मेघ और बर्फ़ बनकर ये नदियाँ अपने बचपन में लौट आती हैं। मेघों को यह मलाल शायद सृष्टि के आरंभ से ही है कि वे नदी के साथ सागर में गई हुई मिट्टी को अपने साथ वापस नहीं ला सकते। भविष्य के तमाम पर्वत आज के सागरों में ही तो रचे जाने हैं। इस तरह कोई भी पर्वत करोड़ों साल में बन पाई रचना होती है।

इन शिखरों के आसपास अनंत प्राकृतिक सौंदर्य पसरा पड़ा है। यह 'हिमालयी वन्यता' है। हर मौसम में इसका मिजाज अलग-अलग होता है। सूरज से ये अलग तरह से बात करते हैं और चाँद-तारों से अलग तरह से। अभी भी हिमालय की इस वन्यता के कुछ हिस्से मनुष्य की आँख से बचे हैं। यहाँ तीर्थस्थान हैं, देवताओं के वास हैं, परियों के इलाके हैं, फूलों की घाटियाँ हैं। सफ़ेद बुराँस, भोजपत्र और जूनीपर के वन हैं। तमाम बुग्याल हैं। भरल, कस्तूरा, मोनाल, स्नो कॉक और हिमचितुवा के घर हैं। हज़ारों वनस्पतियाँ और जीव-जंतु हैं। ताल हैं, दर्रे हैं और हमारे पूर्वजों द्वारा हज़ारों सालों से बार-बार चले गए मार्ग हैं। कुछ मौसमी बसासतें हैं। उनके बाशिन्दे, याक, भेड़, घोड़े, मिथुन, बकरी, दो कूबड़ वाले ऊँट और भोटिया कुत्ते हैं। स्वाभाविक है कि इन समुदायों की अपनी संस्कृति है और अर्थव्यवस्था भी। गीत हैं और संगीत भी। सभी इस परिवेश से संचालित हैं।

इस तरह एक विशिष्ट प्रकार की भूगर्भिक-भौगोलिक प्रक्रिया ने जहाँ हिमालय का निर्माण किया, वहीं हिमालय ने फिर अपनी तरह से अपने को रचा और सागरों तक के शेष भूगोल को भी।

## सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता

अपनी 'पवित्रता' के कारण विभिन्न एशियाई समाजों के चेतन-अवचेतन में स्थायी रूप से स्थापित हिमालय मिथकों और प्राचीन साहित्य में बहुवर्णित है। प्राकृतिक सौंदर्य, मिथक बहुलता तथा भौगोलिक दुरूहता ने यहाँ सैकड़ों तीर्थ स्थानों को जन्म दिया।[9] विभिन्न मानव समाज और संस्कृतियाँ यहाँ एक-दूसरे में आत्मसात होती रहीं और उनके अनेक हिस्से अलग भी बने रहे। कदाचित् इसीलिए इतनी विविधता भरा कोई और प्राकृतिक या मानवीय क्षेत्र हमारी पृथ्वी पर नहीं है।

सामाजिक विकास के अलग-अलग चरण यहाँ स्पष्ट देखे जा सकते हैं। जनजातीय[10], जातीय और वर्गीय समाज अगल-बगल खड़े

हैं। पहाड़ों में पशुचारण, घाटियों में खेती तथा हिमालय के आर-पार फैले विनिमय-व्यापार के कारण एक अलग प्रकार के सामाजिक-आर्थिक विकास का ताना-बाना यहाँ विकसित हुआ। चारों ओर से आए समुदायों के विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक अंशों से आज के हिमालयी समाज और संस्कृति की रचना हुई है।

विभिन्न मानव समूहों का मिलन क्षेत्र (मेल्टिंग पॉट), अनेक राजनीतिक व्यवस्थाओं का संधि स्थल तथा एशिया की सर्वाधिक महत्वपूर्ण नदियों का उद्गम क्षेत्र होने के साथ निरंतर बढ़ते भू-राजनीतिक महत्त्व ने आज हिमालय को ज़्यादा समग्रता और गहराई में (भूगर्भ, भूगोल, इतिहास, नृतत्त्व, समाजशास्त्र, आर्थिकी सहित) जानने का औचित्य सिद्ध कर दिया है। आज यह ज़रूरी है कि हिमालयी मिथकों के अध्ययन के साथ हिमालय के विविध आयामों का विज्ञान सम्मत तथा स्वतंत्र अध्ययन करने का प्रयास हो।

हिमालय का बहुराष्ट्रीय तथा बहुक्षेत्रीय पर्वत होना इसके राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय अध्ययनों का औचित्य सिद्ध करता है ताकि उसे उस राष्ट्र के हिस्से के रूप में देखा जा सके और हिमालय के हिस्से के रूप में भी। इससे हिमालय को 'केंद्र' (सेंटर) तथा 'किनारे' (पेरीफेरी) दोनों हैसियतों से देखा और समझा जा सकेगा। साथ ही यह दुनिया के सर्वोच्च तथा अत्यंत विविधता भरी पर्वतमाला को कुछ ज़्यादा गहराई से जानने के प्रयास की शुरुआत भी होगी।[11]

हिमालयी इतिहास का अगला आयाम विभिन्न मानव समूहों तथा समाजों और उनके अंतर्संबंध से जुड़ा है। हिन्दुकुश-हिमालय में मनुष्य के विचरण तथा बसाव की प्रक्रिया बहुत रोचक है। अभी गहराई से यह विश्लेषित किया जाना है कि निग्रो वंशी, काकेशस वंशी तथा मंगोल वंशी सहित विभिन्न प्राचीन समुदायों के बीच हिमालय आगमन के बाद किस तरह संघर्ष, समझौता और समन्वय हुआ।[12]

इस प्रक्रिया में एक समुदाय ने दूसरे समुदाय से सीखने का प्रयास किया। इन समुदायों ने अपनी प्रारंभिक संस्कृति का निर्माण, आर्थिक क्रियाकलापों का विकास और लोक विज्ञान के प्रयोग किए। हिमालय में झूम खेती, पशुचारण, पेयजल, घराँट; भवन निर्माण, मूर्ति तथा मुखौटा निर्माण कला; सिंचाई व्यवस्था, खनन तथा धातु कर्म और यातायात व्यवस्था-पुल निर्माण आदि क्रियाकलाप खास पारिस्थितिक तथा भू-राजनीतिक दबावों के बीच विकसित हुए हैं।[13]

यदि आज हिमालय में लद्दाख के नीली आँखों वाले द्रोकपा; उत्तराखंड के शौका, बनराजि, थारु या बोक्सा; नेपाल के बनराजि, शेरपा; सिक्किम के लेप्चा; अरुणाचल, भूटान या तिब्बत के ब्रोकपा और अरुणाचल-नागालैण्ड आदि सहित पूर्वोत्तर राज्यों की कुछेक जनजातियों/समुदायों की तरफ़ नज़र डाली जाए तो वे उन मानव सम्पर्कों की विविधता को उजागर करते हैं,

जो हिमालय में संभव हुए।[14] हिमालय की विभिन्न समाज-संस्कृतियों ने अलग-अलग समय में जन्मे और अलग-अलग स्रोतों से आए मिथकों तथा धर्मों को आत्मसात करने का प्रयास किया और अपने अलग लोक धर्म भी विकसित किए।[15]

हिन्दू, बोनपा, बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लामी तथा सिक्ख परंपराओं ने निश्चय ही हिमालय के अनूठे प्राकृतिक आकर्षण से विवश होकर अपने को इस पर्वत से जोड़ा है। बोनपा सहित कितनी ही प्राचीन समाज-संस्कृतियाँ अपने एकदम भिन्न मिथकों को हिमालय में पाले-पोसे हुए हैं। ऐसा लगता है कि हिमालय के इसी प्राकृतिक व्यक्तित्व ने पुराण कथाओं के एक अंतहीन सिलसिले को जन्म दिया है। इतिहास और पुराण कथाओं की इतनी करीबी कहीं और नहीं मिलती है। हर नदी, शिखर, दर्रे, ताल या गुफा के साथ कोई न कोई कहानी जुड़ी है। अधिकांश बार न मनुष्य का तर्क काम करता है, न विवेक।

कालिदास का और हमारा 'देवतात्मा' उत्तर में हो सकता है पर तिब्बत के तमाम घुमन्तू कबीले, जिनमें से अधिकांश बौद्ध धर्मावलम्बी हैं, श्रद्धा से इसे दक्षिण में देखते हैं। हिमालय उस पार वालों का भी है क्योंकि उन सबकी आस्थाएँ और विश्वास इसमें जन्मे, पले और फैले हैं। कितने ही देवताओं से जुड़ी ऐसी कितनी ही कहानियाँ तमाम भाषाओं के पुराने साहित्य से ढूँढ़ी जा सकती हैं। इसमें हिमालय का सैकड़ों चेहरे वाला मौखिक साहित्य भी शामिल है।

भारतीय उप महाद्वीप की शैव, शाक्त और वैष्णव परंपरा हिमालय में स्पष्ट दिखती है।[16] शिव हिमालय के प्रभावशाली देव हैं। सर्वोच्च क्षेत्र शिव के प्रभाव में है। ज़्यादातर जगह में घुमन्तू शिव विराजमान हैं। अमरनाथ से पंच केदार होकर कैलास-मानसरोवर और काठमांडू से आगे तक शिव-क्षेत्र का फैलाव है। स्वयं शिव कहीं सिर, कहीं जटा, कहीं बाहु, कहीं पश्चभाग और कहीं नाभि हैं। वैष्णव देवताओं को हिमालय से जोड़ने का प्रयास हुआ पर शिव हिमालय के निर्विवाद देव नायक हैं और बने रहेंगे। अनेक स्थानीय देवताओं को शिव की परंपरा में विलीन करने का प्रयास भी हो रहा है।

दक्षिणी (बाहरी हिमालय) पट्टी में कामाख्या (असम) से पुण्यागिरी (उत्तराखंड) से वैष्णोदेवी (जम्मू कश्मीर) तक शाक्त या मातृ देवी की परम्परा का विस्तार है, जो मनुष्य को उसके सबसे प्रारंभिक आस्था-विश्वासों तक ले जाती है। बीच में बद्रीनाथ या मुक्तिनाथ की तरह कुछ वैष्णव क्षेत्र हैं तो चोमोलंगमा तथा नन्दा देवी नाम के पर्वत शिखर आज भी मिथक तथा सामाजिक यथार्थ के बीच खड़े हैं।[17]

शिखर से पहले स्वयं चोमोलंगमा देवी है। उसे 'पृथ्वी माता' जैसा संबोधन मिला है। उत्तराखंड में पूजित नन्दा देवी इन देवियों में है और इनसे अलग भी। नन्दा देवी एक

प्रकार से पर्वत, मिथक तथा सामाजिक यथार्थ का मिला जुला रूप है। वह कदाचित अकेली देवी है जो सिर्फ़ माँ होने से इंकार करती है। वह बेटी, बहन और बहू का रूप भी लेना चाहती है और लेती है। वह नियन्ता भी है और निरीह भी। वह हिमालय की बेटी है और हिमालय की माँ भी। वह कत्यूरियों की कुल देवी है तो चंद तथा परमार शासकों की बेटी भी। उसके नाम से जुड़े शिखर शिव के नाम से जुड़े शिखरों से कम नहीं हैं। वह आस्था की देवी तो हैं ही, उल्लास और उदासी की देवी भी हैं। नन्दा देवी तथा लाटू को हम अपने आज के समाज में भी देख सकते हैं।[18]

तिब्बती सीमान्त या कहें कि भीतरी हिमालय में अफ़गानिस्तान-कश्मीर से लेकर म्यांमार सीमा तक मौजूद बौद्ध मठ विशिष्ट बौद्ध परम्परा के जीवंत अवशेष हैं। यह बौद्ध पट्टी सांस्कृतिक ही नहीं भौगोलिक रूप से भी अनेक क्षेत्रों में तिब्बत से जुड़ी है। बल्कि सर्वोच्च शिखरों के दोनों ओर मौजूद है। हज़ार-डेढ़ हज़ार साल पुराने स्मारक आज भी हमारे बीच मौजूद हैं। अफ़गानिस्तान के बामियान बुद्ध; तक्षशिला (पाकिस्तान) के अवशेष; लद्दाख के विभिन्न मठ तथा किले; स्फीति में कच्ची मिट्टी की ईंटों से बना ताबो या किन्नौर का लालुंग मठ तथा अन्य बौद्ध स्मारक न सिर्फ़ हज़ार साल से अधिक समय के इतिहास के गवाह हैं वरन आज थोलिंग और छपरा सहित पश्चिमी तिब्बत के धवस्त स्थापत्य को समझने की कुंजी भी यही इमारतें हैं।[19]

यही बात नेपाल, सिक्किम, भूटान तथा अरुणाचल (विशेष रूप से तवांग) के तमाम मठ और स्मारकों तथा उनके तिब्बत के मठों से संबंध के बारे में कही जा सकती है। उत्तराखंड में यह उपस्थिति स्थापत्य तथा मूर्तिकला के रूप में तो है पर वर्तमान सामाजिक स्तर पर सिर्फ़ जाड समुदाय को बौद्ध कहा जा सकता है। हाँ दलाई लामा के साथ आए और उत्तराखंड में बस गए तिब्बतियों ने ज़रूर यहाँ बौद्ध स्मृति को कायम रखा है।

इसी तरह लोक देवताओं, जिनमें से कुछ घुमन्तू भी हैं, की अखिल एशियाई देवी-देवताओं से स्वतंत्र एक और आकर्षक परंपरा हिमालय में प्रवाहमान है। दरअसल लोक देवताओं की यह विविधता यहाँ की प्राकृतिक तथा मानवीय विविधता से जुड़ी है। जिन स्थानों पर यहाँ के मनुष्य ने अपनी संस्कृति, विचार या आस्था को तीर्थ का रूप दिया वे मंदिर या मठ या गुरुद्वारे के बिना भी दुनिया के सुंदरतम स्थान थे और हैं। यह तथ्य प्राचीन पूर्वजों के सौंदर्यबोध का और उस समझ का दिग्दर्शक भी है, जो वन्यता में ही पवित्रता ढूँढ़ती रही है।[20] बल्कि मनुष्य ने इस अद्भुत वन्यता को अपने अहं से क्षतिग्रस्त ही किया है। हिमालय में विविध धर्म और उनकी शाखाएँ जीवंत बनी हैं और सौभाग्य से ऐसे समुदाय, समाज, कबीले भी यहाँ बचे हैं जो इस दुनिया में प्रचलित किसी भी धर्म

को नहीं मानते। वे चाँद और सूरज के धर्म को मानते हैं या पेड़ और तालाब या प्रकृति के धर्म को। वे प्रचलित और अनेक बार पगला गए धर्मों से पहले की आस्थाओं के असली प्रतिनिधि बने हुए हैं। संस्थानिक धर्मों से पहले आस्था का मिजाज कैसा रहा होगा, इसे आज भी हिमालय के कुछ बाशिन्दों या समुदायों में ढूँढ़ा जा सकता है। अलग-अलग धर्म-संस्कृतियों के विश्वासी होने के बावजूद एक-दूसरे पर निर्भरता और साझा सांस्कृतिक विरासत का उदय भी इस इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

धर्म का सीमित तंत्र अनेक बार संस्कृति के संसार में खलल डालता है और मनुष्य के माथे पर हिन्दू, बौद्ध, ईसाई या इस्लामी पहचान देखना चाहता है पर वह सफल नहीं हो सका है। हिमालय में इस मनोविज्ञान के बावजूद विशिष्ट और साझा सामाजिक-सांस्कृतिक पहचानें विकसित हो सकी हैं। वैष्णो देवी के गायक तथा अमरनाथ यात्रा में शिव भक्तों के व्यवस्थापक इस्लाम धर्मावलम्बी हैं तो तिब्बत में हिन्दुओं की सुव्यवस्था बौद्ध करते हैं। हिमालय के विभिन्न बौद्ध मठों या सिख तीर्थों में गैर-सिख या गैर-बौद्ध यात्रियों की संख्या वास्तव में मूल धर्मावलम्बियों से ज़्यादा है। हेमकुण्ड साहब तथा रीठा साहब के अनेक सेवादार गैर-सिक्ख रहे हैं। बद्रीनाथ के कपाट केरल मूल के लम्बूदिरी ब्राह्मण और माणा गाँव के जनजातीय मुखिया मिलकर खोलते हैं। जम्मू-कश्मीर में हिन्दू-बौद्ध तथा मुसलमानों का सहकार है तो पूर्वोत्तर में हिन्दू-बौद्ध (यह भी याद रखना होगा कि बांगलादेश से आए चकमा भी बौद्ध हैं), ईसाई तथा मुसलमान साथ-साथ रहते हैं।

पश्चिमी तिब्बत के कैलास पर्वत तथा मानसरोवर क्षेत्र में स्थिति सबसे भिन्न और असाधारण है। इस पर्वत तथा सरोवर की यात्रा या परिक्रमा सबसे प्राचीन बोन्पा, हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्मावलम्बी और आधुनिक पाश्चात्य तथा चीनी पर्यटक साथ-साथ करते हैं।[21] यह क्षेत्र एक अनोखा और बहु-सांस्कृतिक गन्तव्य है। साम्यवादी चीन के पश्चिमी तिब्बत क्षेत्र में न अयोध्या का दृश्य है और न जेरुसलम का। इस क्षेत्र को किसी एक समुदाय, धर्म या विश्वास से जुड़ा हुआ नहीं माना जा सकता है। यह मूल मानवीय एकता का दुर्लभतम् उदाहरण है।

हिमालय के कितने ही कबीले हैं, जिनके अपने-अपने स्वायत्त संसार हैं और इस संसार में थोड़ा-थोड़ा सब कुछ है। किसी भी प्रकार से जोड़ें इनके रंग सात से ज़्यादा ही हो जाते हैं। यही हिमालय की विविधता, विशिष्टता और इनके अंतर्संबंध को बनाए हैं। सबसे आश्चर्यजनक और महत्वपूर्ण बात यह है कि गूजरों, शेरपाओं, बनराजियों, ब्रोकपाओं, द्रोकपाओं, लेप्चाओं तथा उत्तर-पूर्वी भारत-म्यांमार सीमा की अनेक जनजातियों की मुख्य रुचि अभी भी प्रकृति में है, संस्थानिक धर्म में नहीं। यही नहीं मणिपुर की वैष्णव परंपरा के ठीक बगल में नागाओं की समर्थ कबीलाई परंपरा है, जो ईसाई धर्म से जुड़ने के

बाद भी अपनी विशिष्टता को कायम रखे हुए हैं। उससे कुछ ही आगे अरुणाचल, तिब्बत तथा म्यांमार की मिलती सीमा में बौद्ध संस्कृति भी जीवंत है। उत्तराखंड के तीर्थों में अन्य धर्मावलम्बियों के आने की परंपरा है।

परशुराम की स्मृति हिमाचल के रेणुका ताल तथा उत्तराखंड के रेणुका मंदिरों से अरुणाचल-म्यांमार सीमा और लोहित नदी के उद्‌गम प्रदेश में स्थित परशुराम कुंड तक फैली है। ब्यास ऋषि कुमाऊँ की काली, गढ़वाल की विष्णु गंगा और हिमाचल की कुल्लू (ब्यास) घाटी में और कण्व ऋषि कोटद्वार के पास प्रत्यक्ष स्मृति में हैं। सभी ऋषियों ने हिमालय में अपने को स्थापित किया है। हिमालय के पाद प्रदेश में गौतम बुद्ध तथा कश्मीर में ईसा मसीह के आने की कहानी भी प्रचलित है। सैयदों की गाथाएँ हमारे होंठों में बनी हुई हैं और सूफियों के कलाम भी। हिमालय में रामकथा सीमित है पर महाभारत यहाँ एक अत्यन्त विस्तारित तथा बहु संस्करणीय कथा प्रवाह के रूप में प्रचलित है। कश्मीर से त्रिपुरा तक इसका फैलाव है।

कौरवों तथा पांडवों का लोक देवताओं में रूपान्तरण हिमालय में ही संभव हुआ है। हिमालय से ही उनका तथाकथित स्वर्गारोहण भी हुआ।[22] उत्तराखंड की टौन्स घाटी में आज भी पांडव और कौरव दोनों पूजनीय हैं। यहाँ कर्ण और दुर्योधन के मंदिर भी हैं और देवगण मनुष्यों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान को विचरण करते हैं। मनुष्य अपने देवताओं को अकेला नहीं छोड़ता है या कहें कि देवता अपने मनुष्यों से अलग नहीं रहना चाहते हैं।

जैनों के पहले तीर्थंकर ऋषभदेव कैलास के दक्षिणी चेहरे के पास स्थित अष्टपाद में देह त्यागते हैं तो आदि शंकराचार्य ने उत्तराखंड और कश्मीर आदि में व्यापक भ्रमण किए। बल्कि परंपरा तो आदि शंकराचार्य के केदारनाथ में स्वर्गवासी होने की बात बताती है। उनका स्मारक वहाँ बना है। नानक कुमाऊँ होकर मानसरोवर पहुँचते हैं तो लद्दाख-बुखारा भी और गोरखनाथ आज भी हिमालय के कुछेक हिस्सों में जीवंत हैं। ह्वेनसांग, फाहियान तथा अनेक बौद्ध प्रचारक तथा अन्वेषक हिमालय के आर-पार आते रहे। मणिपद्‌म बंगाल से तिब्बत गए थे।

कालिदास, शंकरदेव, गोरखनाथ, विवेकानंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी, अरविन्द घोष, सरला बहिन, उदय शंकर, निकोलाइ रोरिख, गोविन्दा लामा और कितने ही व्यक्तित्व हिमालय में आए और रहे थे। जैसुइट अंतोनिओ डी अन्द्रादे, हंगरीवासी सोमा द कोरोस, जर्मन जैक मौण्ट, बर्तानवी विलियम मूरक्रोफ्ट, स्वीडी स्वेन हेडिन से लेकर वारियर एल्विन, जॉर्ज मैलोरी, यंग हजबैण्ड, एडमंड हिलेरी, क्रिस बोनिंगटन या हरजोग जैसे दर्जनों खोजी और पर्वतारोही यहाँ आते रहे हैं। पंडित नैन सिंह, किशन सिंह, तेनजिंग, अंग दोरजी, लाटू दोरजी, चन्द्रप्रभा ऐतवाल या बछेन्द्री पाल आदि तो हिमालय की ही सन्तनियाँ हैं। जितना

ज़्यादा इन सबने हिमालय में विचरण किया, उतना ही ज़्यादा उन्हें यह लगा होगा कि वे हिमालय को कितना कम जानते हैं। जितने शिखरों में उन्होंने पाँव रखे उससे ज़्यादा शिखर उन्हें चुनौती देने के लिए खड़े थे। हिमालयी अन्वेषण प्रक्रिया पूर्ण होने में न मालूम कितनी और शताब्दियाँ लगेंगी?

इन मिथक यथार्थों के बीच हिमालय की तमाम लघु समाज संस्कृतियाँ हैं, जो एक-दूसरे से अपरिचित होकर भी एक-दूसरे से अंतर्संबंधित हैं। इसी में उनके उत्सव, मेले, गीत, नृत्य, संगीत-उपकरण, सामाजिक प्रथाएँ हैं। असली और दिखाने के लिए तलवारें और तीर भी हैं। पारंपरिक ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न रूप हैं। प्यार-मुहब्बत, स्त्री-पुरुष संबंध और आचार-विचार हैं। कहीं बहु पतित्व[23] का प्रचलन है तो कहीं बहु पत्नित्व का। कहीं विधवा विवाह प्रचलित है और कहीं यह असंभव बना हुआ है। बौद्ध करुणा से प्रभावित अनेक क्षेत्र तथा समाज हैं, जो पक्षियों का शिकार तक करने में कतराते हैं। मणिपुर जैसे वैष्णव क्षेत्र के पास ही 'हैड हंटर्स' की कबीलाई नागा परंपरा है। कहीं दफ़नाने की प्रथा है तो कहीं जलाने की और कहीं शव को काटकर पक्षियों-जानवरों को खिलाने की।[24]

इस सबके बीच पूर्वोत्तर तथा पश्चिमोत्तर भारत में लगातार विद्रोही स्वर उठते रहे हैं। पाकिस्तान के कबीलाई क्षेत्र भी लगातार अशान्त रहे हैं। भारतीय उपमहाद्वीप की राज-व्यवस्थाएँ (और समाज-व्यवस्थाएँ भी) अभी इन समाजों/समुदायों का पूरा विश्वास अर्जित नहीं कर सकी हैं। हमारा केंद्रीकृत जनतंत्र उनकी विकेंद्रीकृत जीवन पद्धति को अभी तक नहीं समझ सका है। औपनिवेशिक सरकार ने कम-से-कम उन्हें 'गैर-आयनी' (नान-रेगुलेटेड) कहने की समझ तो दिखाई थी।

ये समाज संस्कृतियाँ किसी एक आयामी केंद्रीय व्यवस्था द्वारा हाँके जाने के लिए नहीं बनी हैं। ये समुदाय संचालित विकेन्द्रित व्यवस्थाएँ दरअसल अत्यंत केंद्रित सरकारों को पूरी मान्यता देने का मन अब भी नहीं बना सकी हैं। पाकिस्तान का उत्तरी क्षेत्र, भारतीय कश्मीर, नेपाल तथा नागालैंड, मणिपुर, असम आदि लगातार अशांत क्षेत्र ही बने रहे हैं।

पूरे हिमालय में पूरब-पश्चिमी भौगोलिक निरंतरता के बावजूद उत्तर-दक्षिणी सामाजिक, आर्थिक तथा पारिस्थितिक रिश्ता भी है। उत्तरी भारत के मैदानी समाज और तिब्बती समाज का रिश्ता हिमालय के विभिन्न समुदायों के मार्फत सदियों पहले कायम हुआ और विभिन्न राज्य व्यवस्थाओं या शासन प्रणालियों के बावजूद आधी सदी पहले तक कायम रहा। चीन द्वारा तिब्बत पर अधिकार करने के बाद यह संबंध अधिकांश क्षेत्रों में तिरोहित हो गया। जैसे उत्तराखंड को ही लें तो इसका तिब्बत और गंगा-यमुना के मैदान में स्थित समाज-संस्कृतियों से खास संबंध रहा है। यह कहीं सघन और कहीं विरल हो

सकता है। साथ ही इसकी महाकाली अँचल के नेपाल और सतजल-वास्पा घाटी के हिमाचल से भी इतनी ही घनिष्ठता है। यही बात कश्मीर, हिमाचल, नेपाल, सिक्किम, भूटान तथा पूर्वोत्तर की सातों बहनों के बारे में भी कही जा सकती है। मनुष्यता की कितनी ही पर्तें हिमालय में पढ़ी तथा पहचानी जा सकती हैं। अनेक गुम गई हैं या अब भी छिपी हैं।

हिमालय की भाषा–बोलियाँ, कलाएँ (कपड़ा, मिट्टी, प्रस्तर, धातु, लकड़ी, रेशे, रंग से जुड़ी हुई) तथा अन्य सांस्कृतिक-साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ इन्हीं जीवन पद्धतियों के बीच विकसित हुई हैं। इनमें आज भी अनेक 'अनपढ़' या 'निरक्षर' समाज हैं लेकिन परिस्थितियों ने उन्हें बहुभाषी बनाया है। भारोपीय आर्य भाषाओं, बर्मी-तिब्बती, आग्नेय तथा द्रविड़ भाषा परिवारों का सहस्राब्दियों में होता रहा आदान-प्रदान आज हिमालयी भाषा-बोलियों में प्रकट होता है। हिमालयी भाषाओं पर **जॉर्ज ग्रियर्सन** से **डी.डी. शर्मा** तक भाषाविदों द्वारा किए गए अध्ययन सांस्कृतिक विविधता को समझने में मदद देते हैं, हालांकि विकास तथा आधुनिकता का दैत्य भाषाओं का भी भक्षण कर रहा है।[25]

हिमालयी संस्कृति और इसके शेष एशिया से संबंधों को जानने हेतु तीर्थयात्रा की परंपरा को समझना आवश्यक है। हिमालय में बोन्पा, हिन्दू, बौद्ध, जैन, इस्लामी तथा सिख तीर्थ मौजूद हैं। अमरनाथ, चरार-ए-शरीफ, वैष्णोदेवी, लामायुरू, मणिमहेश, ताबो, उत्तराखंड के यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ तथा बद्रीनाथ (चार धाम), रीठा साहिब-नानकमत्था-हेमकुंड साहिब, कैलास-मानसरोवर-तीर्थापुरी-थोलिंग, मुक्तिनाथ, ऐवरेस्ट के उत्तरी तथा दक्षिणी ढालों के बौद्ध मठ, काठमाण्डू तथा उसके आसपास के तीर्थ, सिक्किम-भूटान और अरुणाचल (तवांग) के बौद्ध मठ, परशुराम कुंड, कामाख्या धाम (गुवाहाटी) तथा ल्हासा-सामये-सिगात्से-ग्यान्त्से तक हर ओर तीर्थ यात्रा की एक संपन्न परम्परा है।

पूरे देश में उक्त तीर्थों/देवताओं पर अपनी सन्ततियों के नाम रखे जाते हैं। हिमालय की ज़्यादातर तीर्थयात्राएँ मौसमी हैं और ग्रीष्म से शरद के बीच संपन्न होती हैं। ये यात्राएँ हिमालय से एशिया के अन्य क्षेत्रों के लोगों का संबंध जोड़ती हैं। तीर्थयात्रा के साथ यात्रा मार्गों तथा चट्टियों (पड़ाव) की व्यवस्था भी जुड़ी रही है। स्थानीय समाज किस तरह आगन्तुकों के रहने और भोजन की व्यवस्था करता है और कैसे जोगी और गृहस्थ साथ-साथ यात्रा करते हैं, इसके उदाहरण आधुनिक समय में भी नज़र आते हैं।[26]

हिमालय की यात्राओं के लिए कम-से-कम एक दर्जन स्वस्थ, साधन संपन्न और समर्पित जीवन चाहिए। कृष्णनाथ ठीक ही कहते हैं कि 'हिमालय भी हिमालय को नहीं जानता है'। हिमालय के सौंदर्य को सिर्फ़ मनुष्य ही महसूस कर सकता है। वे जीव-जन्तु जो यहाँ रहते हैं वे इसकी वनस्पतियों का स्वाद जानते

हैं। जो पक्षी इसके आर-पार उड़ानें भरते हैं, वे इसकी ऊँचाई का एहसास रखते हैं। जो मछलियाँ इसकी जल प्रणालियों में मौजूद हैं वे जानती हैं कि कौन-से खनिजों से उनका वास्ता पड़ रहा है पर यहाँ के सौंदर्य को महसूस करने की क्षमता सिर्फ़ मनुष्य को ही मिली है। हालांकि यह मनुष्य ही है जो कई बार अपनी इस क्षमता का इस्तेमाल नहीं करता है। तब वह मनुष्य नहीं रह पाता है और अपने ही पहाड़ों को रौंदने लगता है।

इस तरह हिमालय में उभयनिष्ठ समाजों तथा संस्कृतियों के अनेक स्वाभाविक क्षेत्र हैं। ये सामाजिक तथा सांस्कृतिक विविधता के अक्षय द्वीप हैं। इनमें शिकारी-संग्राहक, व्यापारी तथा नौकरी पेशा समाज की कितनी ही पर्तें मौजूद हैं। 'येती' हो सकता है कि एक हिमालयी कल्पना हो या वह उच्च हिमालय का भालू हो, पर हिमालय में आज भी शिकार तथा संग्रह पर निर्भर समाज हैं। शत-प्रतिशत पशुचारक समुदाय यहाँ मौजूद हैं। पशुचारक-व्यापारी या खेतिहर-व्यापारी भी यहाँ हैं और अपनी मिट्टी तथा नदी की तरह मैदानों को विस्थापित 'प्रवासी' भी।

ये समाज कहीं-कहीं 'अनपढ़' भी हैं लेकिन हैं बहुभाषी। सहस्राब्दियों की मौखिक परम्परा वाले समाज पिछले 200 साल से 'लिखित' की दुनिया में भी प्रवेश कर गए हैं। कवि गुमानी (1791-1846) हिंदी, संस्कृत, कुमाऊँनी और नेपाली में कविता लिख रहे थे तो मोलाराम (1743-1833) ने चित्रकला, इतिहास और कविता की त्रिवेणी हिंदी तथा फारसी की धारा में बहकर रची। नेपाली कवि भानुभक्त पर रामायण का असर था तो कश्मीरी भाषा में नुरुद्दीन वली (1376-1438) से अहमद जरगर (1908-1984) तक सूफी काव्य का अद्‌भुत प्रभाव देखा जा सकता है। पर मौखिक परम्परा गतिशील बनी रही। झूसिया दमाई (1910-2005) अभी तक भी नेपाली, कुमाऊँनी और कुछ भोट-तिब्बती की समन्वित लोक भाषा में मिथकों और लोक गाथाओं की एक मिश्रित परम्परा को जीवित रखे थे, जिसमें गद्य एकाएक गीत में और गीत नृत्य में रूपान्तरित हो जाता है। ऐसे ही मोहन सिंह रीठागाड़ी (1905-1984) तथा गोपी दास ने मालोशाही या रमौल गाथा को तो केशव अनुरागी ने ढोल सागर तथा सैयद वाणी को जीवित रखा था। ऐसे अनेक लोक गायक हिमालय में होंगे, जिन्हें हम नहीं जानते हैं। ये गायक अभी भी मौखिक या वाचिक परम्परा के प्रतिनिधि और पहरुए हैं।

## तरह-तरह के संसाधन

हिमालय सिर्फ़ सौंदर्य और समाज-संस्कृति ही नहीं है। किसी भी पर्वतमाला की तरह यह संसाधनों का घर भी है, जो अनंतकाल से मनुष्यों द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे हैं। इसी से हिमालय का पारिस्थितिक पक्ष भी जुड़ा है। शिकारी, घुमक्कड़, पशुचारक, काश्तकार, व्यापारी से प्रवासी अर्थव्यवस्था के दौर तक में इन संसाधनों का इस्तेमाल होता आ रहा है और

अभी इसके रुक जाने की कोई उम्मीद भी नहीं है। औपनिवेशिक व्यवस्था ने 'संसाधनों' को आंशिक रूप से 'माल' करार दिया था और आज खुले बाज़ार की बहुराष्ट्रीय पद्धति ने इन जीवन संसाधनों को 'कमोडिटी' बना दिया है और यह 'कच्चे' और 'पक्के' रूप में सतत लूट का शिकार हैं। इसलिए देश के अन्य दूरस्थ-दुर्गम क्षेत्रों की तरह हिमालय भी आन्तरिक उपनिवेशवाद से ग्रस्त है, त्रस्त है।

हिमालय के संसाधनों को जमीन, जंगल, जल, जन-जानवर तथा वन्यता में विभाजित किया जाता रहा है। जमीन आधारभूत यानी कि मातृ संसाधन है। जमीन में खेती, चारागाह तथा जंगल हैं। नदियाँ जमीन पर बहती हैं तो नाना ग्लेशियर तथा तालाब इसी में पसरे पड़े हैं। दरअसल भूगर्भ, मौसम तथा तुंगता तय करते हैं कि जमीन का मिजाज़ कैसा हो। वह बर्फ़ से ढकी हो या गौर्ज का रूप ले ले या बुग्याल हो जाए अथवा बगड़। जमीन को मनुष्य व्यक्तिगत मिल्कियत तक ले आया है। यही दरअसल खेती की जमीन है। अत: वह इसे खरीदता और बेचता है। आज नव धनाढ्य, व्यवसायी इसकी खरीद-फ़रोख्त करने लगे हैं।

अपनी नदियों के कारण हिमालय बिना माँगे ही उत्तरी भारत को मिट्टी, उर्वरता और पानी बाँटता रहा है। मनुष्य की जल्दबाजी से मिट्टी के जाने की गति बढ़ गई है। दियारा क्षेत्र से बंगाल की खाड़ी के मूर द्वीपों तक इसे पहचाना जा सकता है। और यह मिट्टी ही है जो हमें मिट्टी नहीं होने देती है। हिमालय की लड़ाइयाँ इसी मिट्टी की हिफ़ाजत के लिए चल रही हैं।[27]

पानी हिमालय में ठोस, द्रव तथा गैस तीनों रूपों में प्रकट होता है पर निर्णायक गतिशीलता सिर्फ़ दूसरे रूप को मिल पाती है। क्योंकि उसे बहना आता है। वैज्ञानिक हिमालय को 'पानी की मीनारें' (वाटर टावर्स ऑफ़ माडर्न सिविलाईजेसंस) कहने लगे हैं। यह पानी हमारी प्यास बुझाता है, थोड़ा बहुत घरांट तथा सिंचाई के काम आता है। इसमें जो ऊर्जा बहती है उसे पकड़ा तथा इधर-उधर पहुँचाया जा सकता है। उपभोक्ता मन:स्थिति तथा पूँजीवादी दिमाग सिर्फ़ टिहरी जैसे बाँध या बोतल में बंद व्यवसाय, यानी 10 से 15 रुपये में बिकने वाला और हाल ही में 'अशुद्ध' घोषित तथा प्लास्टिक में पैक पानी, की सोचते हैं। उन्हें न मछली की चिन्ता है, न मनुष्य की।

इधर पूरे हिमालय में बाँधों के निर्माण का सिलसिला जारी है।[28] हज़ारों सालों में हमारे पूर्वजों ने पानी को बचाने, इस्तेमाल करने के जो छोटे-छोटे लेकिन सफल प्रयोग किए हैं, उन्हें सिर्फ़ 'पारम्परिक ज्ञान' कहकर खारिज किया जा रहा है। जबकि वे आज भी अर्थवान तथा उपयोगी हैं।[29]

जंगल हिमालय की बर्फ़ जितनी ही महत्वपूर्ण पहचान है। 'पानी की मीनारें' सिर्फ़ ग्लेशियरों में नहीं खड़ी हैं वे जंगलों में भी विराजमान हैं। जंगल हैं तो शिकार और संग्रह हैं, पशुपालन और कुटीर उद्योग हैं, खेती है और व्यापार-वैद्यकी हैं। जंगल हैं तो मिट्टी

बनती और रुकती है। जंगल हैं तो गीत-संगीत हैं और यात्राएँ हैं। कितनी तरह की कलाएँ हैं और उनके उपकरण हैं। जंगल हैं तो पशु और पक्षी हैं। जंगल ही जैविक विविधता को तय करते हैं। हिमालय में जैविक विविधता के अनेक रूप हैं। यदि लद्दाख में पाँच प्रतिशत से कम भू-भाग पर जीवन तथा हरियाली है तो अरुणाचल में दस में से आठ हिस्से जंगलों से पटे पड़े हैं।[30]

अरुणाचल, भूटान, सिक्किम, नेपाल तथा उत्तराखंड में जैव विविधता के कुछ अद्‌भुत इलाके हैं। सूत्र रूप में यह बताना उचित होगा कि हिमालय का क्षेत्रफल पृथ्वी के क्षेत्रफल का मात्र 0.3 प्रतिशत है लेकिन यहाँ दुनियाभर की जैव विविधता का 10 प्रतिशत मौजूद है।[31] इनकी पहचान अब दुश्मनों को भी होने लगी है। हिमालय के जंगलों या यहाँ की वनस्पतियों से भोजन-चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी, जड़ी-बूटी, खाद, कपड़ा, रंग, रेशा आदि सभी कुछ मिलता रहा है। जैव विविधता से ही खेती की विविधता भी जुड़ी हुई है।[32] पर मनुष्य और उसकी व्यवस्थाएँ, जो फिलहाल अंतर्राष्ट्रीय अर्थ तंत्र के आत्मघाती दबाव में हैं, कम समय में ज़्यादा काटना, खोदना, संग्रह करना और मारना चाहती हैं यानी ज़्यादा कमाना चाहती हैं। यह नयी अर्थव्यवस्था में रची जा रही धीमी आत्महत्या है। लेकिन आम हिमालयी बाशिन्दों के लिए तो यह हत्या ही है। जलवायु परिवर्तन का असर इस प्रक्रिया को त्वरित करेगा, इसमें दो राय नहीं है।[33]

हिमालय का मनुष्य संसाधन है और संसाधनों का इस्तेमाल करने वाला भी। दूसरी ओर जहाँ वन्यजीव जंगल और चरागाहों के साथ जैव विविधता का हिस्सा हैं वहीं पालतू जानवर, खेती, परिवहन तथा आहार से जुड़े हैं। यदि हिमालय क्षेत्र की आबादी 5 करोड़ से अधिक मान ली जाय तो पालतू जानवर भी 4 करोड़ के आसपास हो सकते हैं। पर हिमालय के संसाधन कम-से-कम 50 करोड़ लोगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभावित करते हैं। विशेषज्ञों के लिए एक बड़ा काम तो यही है कि वे हिमालय संबंधी सही आँकड़े सर्व सुलभ करें ताकि समझने तथा समझाने की प्रक्रिया सुगम हो सके।

हिमालय का विशिष्ट संसाधन है वन्यता यानी प्राकृतिक सौंदर्य। यह सिर्फ़ शिखर, ग्लेशियर, संगम, बुग्याल, झरना, ताल, फूलों की घाटी, हरा-नीला जंगल या नदी ही नहीं है बल्कि यह इन सब घटकों का संयुक्त सौंदर्य है। इसमें कभी वर्षा शामिल होती है, कभी बर्फ़, कोहरा और कभी ओला-तूफान। इस वन्यता को चाँद और सूरज अपनी तरह से सँवारते हैं। अनेक बार आसमान के तारे इसकी झीलों में उतरते हैं तो अनेक बार उदय या अस्त होते सूरज या चाँद इसके सौंदर्य को बहुगुणित कर देते हैं। बादल किस तरह आसमान से चरने को बुग्यालों में उतरते हैं या कैसे सूरज के जाते ही चाँद आसमान में विराजमान हो जाता है, यह हिमालय में जाकर ऐसे दृश्यों से सामना होने पर ही समझा जा

सकता है। बर्फ़ का पड़ना भी एक गतिमान सौंदर्य का मौन नृत्य है।

इस विराट परिदृश्य में किसी चिड़िया का उड़ना, किसी मोनाल या कस्तूरे का दर्शन, किसी काकड़ का कातर स्वर या किसी गुलदार की गुर्राहट या किसी सरीसृप का सरकना या किसी ताल में किसी मछली का उछलना ये सब अतिरिक्त सौंदर्य की सतत रचना करते हैं। इन सबके बीच मनुष्य या उसकी वसासतें और स्थापत्य या उसके गीत और कारवाँ या उसकी बस्ती से निकल रहा धुआँ इसमें मानवीय सौंदर्य का पुट भी जोड़ देते हैं।

इस अथाह सौंदर्य की रचना राष्ट्र-राज्य या बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ नहीं कर सकती हैं। यह वन्यता हिमालय की अचल सम्पत्ति है। तीर्थाटन तथा पर्यटन दरअसल इसी संपत्ति पर निर्भर हैं। इस संपत्ति का बहुत बड़ा हिस्सा सिर्फ़ चाक्षुस है, उसे कटना या खुदना नहीं है। यही वन्यता है जो आधार बन सकती है इक्कीसवीं सदी के धूल-धुआँ रहित उद्योग यानी जन पर्यटन की। इस पर भी अभी जबर्दस्त दबाव है।

## चुप्पी और लड़ाई के बीच

इस पृथ्वी के इतने सुंदर और निश्चय ही कठिन क्षेत्र हिमालय में इतनी संपन्नता के बीच भी अभाव में हैं और अस्तित्व का संकट है। इसीलिए हिमालय का वर्तमान परिदृश्य परेशान और उदास करता है। यह उदासी पाँच करोड़ से ज़्यादा हिमालयवासियों की है और एक प्रकार से यह राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय उदासियों का हिस्सा है। क्योंकि उसकी नदी उसे बहाती है, उसके पहाड़ उसे दबाते हैं और उसके जंगल और खनिज उसके अपने नहीं हैं। उसके गीतों-नृत्यों के लिए ज़रूरी प्राकृतिक अनुकूलन क्षतिग्रस्त किया जा रहा है। विकास की जबरिया पद्धति उस पर थोपी जा रही है। ऐसा नहीं है कि वह आत्मसमर्पण कर रहा हो।

इस उदासी में भी वह लड़ रहा है और अपने जंगलों, मिट्टी, खनिजों, लोक संस्कृति—एक प्रकार से अपनी अस्मिता—को बचा रहा है। वह बड़े बाँधों और बड़े पर्यटन के समर्थकों, अत्यंत ध्वंशक तरीके से सड़क बनाने और खनन करने वालों तथा लीसा, लकड़ी, जड़ी-बूटी लूटने वालों की शैली और क्षमता के माध्यम से पूरे षड्यंत्र को समझ रहा है। यह समझ कुछ स्थानों तक केंद्रित नहीं है।

जनता के अनेक सक्रिय हिस्से यह मानते हैं कि हिमालय को अलग से बेहतर नहीं किया जा सकता है। इसका पर्यावरण इसकी अर्थव्यवस्था से जुड़ा है और यह अंततः राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक इच्छा या व्यवस्था का सवाल बनता है। हिमालय के समाज सदियों से अपनी रक्षा करते रहे हैं लेकिन आत्मरक्षा जितनी कठिन आज हो रही है, उतनी पहले कभी नहीं हुई।

हिमालय के समुदाय कभी स्थापित होने, कभी हमलावर से अपने को बचाने, कभी

सामंती प्रतिद्वंद्विता से बचने को लड़ते रहे हैं। हिमालय के विभिन्न समाजों की सहनशीलता में अंतर हो सकता है लेकिन प्रतिकार का जैविक या मानवीय गुण सभी में रहा है। स्थान, समय और स्थिति के अनुसार इसका स्वरूप व्यक्ति से समुदाय तक फैलता रहा है और इसी तरह इसकी उदारता या आक्रामकता का मिजाज़ बदलता रहा है। मध्यकालीन सामंती संघर्षों के बाद यूरोपीय शक्तियों के आगमन से पारम्परिक समाजों का स्थायित्व टूटा और पराजय तथा दासता का दौर आया। फिर प्रतिकार और प्रतिरोध का भी।

अठारहवीं सदी के अंतिम दशकों में हिमालय में कुछ स्थानीय सामंतशाहियों का पराभव हुआ लेकिन कम-से-कम तीन विकसित भी हुईं। ये थे डोगरा, गोरखा और अहोम राज्य, जिन्हें औपनिवेशिक शासक पूरी तरह लील नहीं सके। उन्नीसवीं सदी में कंपनी शासन धीरे-धीरे हिमालय के कुछ हिस्सों में घुसता चला गया और स्वाभाविक रूप से हिमालय के कबीले, समाज और इलाके प्रतिरोध के एकल और सामूहिक स्वर बुलंद करने लगे। हिमालय में हुए अधिकांश आंदोलन मुख्यत: किसान तथा कबीलाई आंदोलन थे। जयंतिया, कूकी या मणिपुर का विद्रोह, असम का फूलागढ़ी आंदोलन, उत्तराखंड के जंगलात तथा बेगार आंदोलन, टिहरी रियासत के ढंढक तथा प्रजामंडल आंदोलन, हिमाचली रियासतों के प्रजामंडल आंदोलन, जम्मू के चनैनी तथा कश्मीर के नेशनल कांफ्रेंस आंदोलन आदि से हिमालय में प्रतिरोधों का मिज़ाज और महत्त्व समझा जा सकता है।

इसके अलावा भी हिमालय के हर हिस्से में सामंती तथा औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ संघर्ष होते रहे। नेपाली कांग्रेस का आंदोलन भी एक प्रकार से इस क्रम में रखा जा सकता है। इस दौर में कितनी ही संग्रामी प्रतिभाएँ हिमालय से उभरीं। मणिपुर के टिकेंद्रजित या हिजम ऐरावत; मेघालय के शिवचरन राय; नागा रानी गाईडिनल्यू; नेपाल के विश्वेश्वर प्रसाद कोईराला; उत्तराखंड के गोविन्द बल्लभ पंत, पी.सी. जोशी, चन्द्र सिंह गढ़वाली, श्रीदेव सुमन, नागेन्द्र सकलानी; हिमाचल के वीर रत्न सिंह, फकीर चन्द भापा, यशपाल, सत्यदेव बुशहरी या यशवन्त सिंह परमार और कश्मीर के शेख अब्दुल्ला आदि तक बहुत सारे नाम उभरते हैं। पेशावर में निहत्थे पठानों पर गोली चलाने से इंकार करने वाले या आज़ाद हिन्द फौज़ या नौसैनिक विद्रोह में शामिल सैनिक इस लड़ाकू परंपरा से अलग नहीं हैं।[34]

1947 के बाद भी यह क्रम टूटा नहीं। जनांदोलनों का सिलसिला ज़ारी है। कश्मीर के दोनों हिस्सों तथा पूर्वोत्तर में यह प्रतिरोध बार-बार हिंसक होता रहा है। उत्तराखंड में तो आज़ादी के बाद भी आंदोलन नहीं थमे। नेपाल में जनांदोलन ही जनतंत्र लाए और यह उम्मीद की जानी चाहिए कि नया आंदोलन जनतंत्र को ज़्यादा गहरा और ईमानदार बना सकेगा। आंदोलन तिब्बत तथा भूटान में भी

चल रहे हैं। कभी चुप कभी मुखर। भूटान ने संवैधानिक राजतंत्र के युग में प्रवेश भी कर लिया है। फिलहाल हिमाचल तथा सिक्किम ऐसे हिमालयी प्रान्त हैं, जहाँ शांतिपूर्ण पर धीमी परिवर्तन की प्रक्रिया कायम है। हिमालय के प्रश्नों के हल जितना हम बाहर से थोपेंगे उतनी ही ज़्यादा हम अशांति के बीज/फसल बोएँगे। आज इसे समय पर और समझ के साथ आत्मसात किया जाना ज़रूरी है।

यदि आज हिमालय का सिर्फ़ व्यापारिक उपयोग करना है तो न हिमालय सुरक्षित रह सकता है और न उत्तरी भारत। अपने देश और दुनिया में ऐसे लोग कम नहीं हैं जो हिमालय को अपनी या मानवीय संस्कृति का सर्वोच्च प्रतीक बताने से नहीं चूकते हैं और दूसरी ओर इसकी प्राकृतिक सम्पदा और सांस्कृतिक संपन्नता को नष्ट करने में भी पीछे नहीं हैं। ऐसे ही लोग राज व्यवस्था को चला रहे हैं और यह वास्तविक दृश्य ही हिमालय का वर्तमान संकट है और सबकी चिन्ता का विषय है। दरअसल हड़बड़ी में विकसित इस सभ्यता में आज एक ऐसे मध्यमान की ज़रूरत है जो भौतिक उन्नति और हमारे मूल मानवीय और सामाजिक लक्ष्यों को और कुछ लोगों/देशों के लिए अल्पकालिक फायदे के स्थान पर सभी लोगों/देशों के हित में दीर्घकालीन फायदों को स्पर्श करे।

हिमालय में खगोलीकरण तथा जलवायु परिवर्तन का निश्चय ही मारक असर होगा। पर खगोलीकरण तथा जलवायु परिवर्तन के बाद भी यह बचा और बना रहेगा और हम सबको कुछ-न-कुछ देता रहेगा। मनुष्य उसे बचाने वाला कौन होता है? वह तो दरअसल अपने को बचाने के बहाने हिमालय की बात कर रहा है। क्योंकि हिमालय पर चहुँ ओर चढ़ाई हो रही है। उसके तमाम संसाधन उस गति से लूटे जा रहे हैं, जिस गति से वे पुनर्संस्थापित नहीं किए जा सकते। आधुनिक सभ्यता का सामना करने से हम हिचकने लगे हैं। इसीलिए मनुष्य जाति को कहना पड़ रहा है कि हमारे पास एक ही हिमालय है और हम उसे खोना नहीं चाहते हैं।

सच में हिमालय अपनी बिगड़ैल संतानों को डाँट न सकने वाला पिता और उन पर शक न कर पाने वाली माँ की तरह है। यही बात मनुष्य की व्यवस्थाओं के साथ है। हिमालय को खोने से बचाने के लिए हमें कुछ ऐसी चीज़ें खोने को तैयार रहना पड़ेगा जो अस्थायी चमक लिए हो सकती हैं।

यह आशा करनी ही होगी कि हिमालय की संतानों और समस्त मनुष्यों को समय पर समझ आएगी! पर यह याद रहे कि यह समझ न अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में उपलब्ध है और न कोई अखिल विश्व बैंक या बहुराष्ट्रीय कंपनी इसे विकसित कर सकती है। यह समझ यहाँ के समाजों और समुदायों में है, वहीं से उसे लेना होगा। बस, हमें और हमारे नियन्ताओं को इस समझ को समझने की समझ आए।

## संदर्भ


1. हिमालय में कवि गुरु अनेक स्थानों पर रहे। शिलांग, दार्जिलिंग, रामगढ़, अल्मोड़ा, शिमला सहित जिन स्थानों पर वे रहे वहाँ कहीं भी उनका प्रभावी स्मारक नहीं है। रामगढ़ (नैनीताल) में उनके प्रवास का परिचय पट तक नहीं है। शिमला में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के करीब एक घर के बाहर कवि गुरु के प्रवास का पट लगा है। संस्थान इस परिसर को अर्थवान बना सकता है। शिलांग के जिस 'सिद्धली हाउस' में वे अपनी तीसरी शिलांग यात्रा के समय मई-जून 1927 में रहे थे और जहाँ उन्होंने उपन्यास 'योगायोग' तथा कविताएँ 'सुसमय' और 'देवदारु' लिखी थीं, को जुलाई 2010 में ढहा दिया गया था। इस जगह का भी उचित उपयोग होना चाहिए। इसी तरह ओड़ीसा के जगतसिंहपुर जिले के पांडुवा गाँव में स्थित वह घर भी खंडहर हो गया है, जहाँ कवि गुरु ने 'चित्रांगदा' नृत्य नाटिका लिखी थी। कवि गुरु के 150वें साल में उनसे जुड़ी विरासत के संरक्षण का मौका हमें मिला है; चूकना नहीं चाहिए।
2. हिमालय को अनेक विशेषज्ञ हिन्दुकुश तथा कराकोरम के साथ जोड़ कर देखते हैं तो अनेक इसे सिन्धु तथा ब्रह्मपुत्र नदियों या नंगा पर्वत और नामचे बारवा पर्वतों के बीच समेट देते हैं। तब इसकी लंबाई 2700-3000 किमी. चौड़ाई 250-400 किमी. क्षेत्रफल 600,000 वर्ग किमी. तथा जनसंख्या 5 करोड़ के आसपास मान लेते हैं (देखें: Burrard, S.G., Hayden H.H., Heron, A.M. 1934 (1907), A Sketch of Geology and Geography of the Himalaya Mountains and Tibet, New Delhi; Wadia, D.N., 1953, Geology of India, London; Heim, Arnold and Gansser, August, 1939, Central Himalaya: Geological Observations of the Swiss Expedition 1936, Zurich; Gansser, A, 1964, Geology of the Himalayas, New York; Zurick, David and Pacheco, Julsun, 2006, Illustrated Atlas of the Himalaya, Kentucky).
3. इस हेतु मेरे एक और व्याख्यान को देखें – पाठक, शेखर, 2003, माता हिमालय पिता हिमालय, बहुवचन 11, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, दिल्ली/वर्धा।
4. दुनिया के 8000 मीटर से अधिक ऊँचे 14 शिखर हिमालय में हैं तो काली-गंडकी, सतलुज या ब्रह्मपुत्र नदी की जैसी गहरी घाटियाँ भी यहाँ हैं (Zurick, David and Pacheco, Julsun 2006, Illustrated Atlas of the Himalaya, Kentucky: 3-4)
5. Khatri, K.N. 1987, Great Earthquakes, Seismicity Gaps and Potential for Earthquake Disaster along the Himalayan Plate Boundary, Tectophysics 138; Bhatt, Chandi Prasad, 1997 (1992), The Future of the Large Projects in the Himalaya, Pahar, Nainital; Valdiya, K. S., 1993, High Dams in the Himalaya, Pahar, Nainital; Gaur, V.K. (Ed.), 1993, Earthquake Hazard and Large Dams in the Himalaya, Delhi
6. पामीर, कराकोरम, खरदुंग ला, जौजीला, बारालाचा, कुंजुम ला, सिपकी ला, माणा पास, निती पास, किग्रीबिग्री ला, उंटाधूरा, लिपुलेक, टिंकर ला, नाथू ला, जलप ला, डोंगक्या ला, लेटसावा पास, टुंगा ला आदि दर्जनों दर्रे हिमालय की दो घाटियों या हिमालय और तिब्बत के बीच स्थित हैं। इनसे होकर पुराने व्यापारिक तथा तीर्थयात्रा मार्ग जाते थे। ज़्यादातर दर्रे ऊँचे पर्वतों की निचली धार (5000 से 6500 मीटर) या नदियों के साथ हैं।
7. इन नदियों में सिन्धु, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र क्रमशः 4.28, 25 तथा 33.71 प्रतिशत पानी देती हैं और ये देश के क्षेत्रफल का क्रमशः 9.8, 26 तथा 7.8 प्रतिशत घेरे हैं। इस तरह ये तीनों नदियाँ मिलकर 43.8 प्रतिशत बेसिन बनाती हैं और भारत का 63 प्रतिशत पानी इनसे मिलता है।
8. विभिन्न पर्वत शिखरों की ऊँचाई निम्न प्रकार है- राकापोसी (7788 मीटर), नंगा पर्वत (8125), के-2 (8811), गसेरब्रम (8068), नुनकुन (7135), बंदरपूछ (6102), केदारनाथ (6940), शिवलिंग (6543),

नंदादेवी (7817), नंदाकोट (6881), पंचचूली (6904), राजरंभा (6537), आपी (7132), मनास्लू (8163), सीसापांगमा (8013), धौलागिरी (8167), अन्नपूर्णा (8091), चोओयू (8201), ल्होत्से (8516), चोमोलंगमा यानी सागरमाथा यानी एवरेस्ट (8850), मकालू (8481), कंचनजंगा (8586), कुन्लाकांगरी (7600), नामचे बारवा (7800 मीटर)।

9. देखिए– Bernbaum, Edwin, 1992 (1990), Secred Mountains of the World, San Francisco, 2-23, 206-248.
10. इनमें कलश, बल्ती, बकरवाल, लद्दाखी, जन्सकारी, गद्दी, गुज्जर, जौनसारी, शौका, थाडू, बोक्सा, बनराजी, भोटिया, ब्यांसी, मगर, गुरंग, तमांग, नेवार, शेरपा, राय, लिम्बू, लेप्चा, द्रोकपा, मोनपा, अबोर, मिस्मी, अपातनी, नागा, मिजो, खासी, जयन्तिया आदि तो सुपरिचित हैं पर और भी जनजातियाँ हैं।
11. देखें– शेखर पाठक, हिमालय का इतिहास– मिथक से यथार्थ की ओर, उत्तर प्रदेश इतिहास कांग्रेस के 14वें अधिवेशन में 27 सितम्बर 2003 को दिया गया अध्यक्षीय व्याख्यान, in Sinha, A.K. (Ed.) 2005, Dimensions in Indian History, Anamika, Delhi: 1-33.
12. Majumdar, D.N., 1946, *The Fortunes of Primitive Tribes, Lucknow*; डबराल, शिव प्रसाद, 1968, *उत्तराखंड का इतिहास,* दोगडा; Pathak, Shekhar, 1988, *Kumaoni Society through the Ages,* Kumaon– Land and People, 97- 110 इस संबंध में एक नया तथा बहुआयामी रोचक अध्ययन मीकेल विटजैल ने किया है। इसके और विस्तार तथा गहराई में जाने की ज़रूरत है। (See : Witzel, Michael, 2005, *Central Asian Roots and Acculturation in South Asia– Linguistic and Archaeological Evidence from Western Central Asia, the Hindukush and Northwestern South Asia for Early Indo Aryan Language and Religion)*, in Lingustics, Archaeology and the Human Past (Edited by Toshiki, OSADA), p. 87-211, Indus Project, Research Institute for Humanity and Nature, Kyoto, Japan)
13. Pande, Girija, Geijerstam, Jan af. (EosQ.), 2002, *Tradition and Innovation in the History of Iron Making,* Nainital; Geijerstam, Jan af., 2004, *LanosQcapes of Technology Transfer– Swedish Iron Makers in India (1860-1864)*, Jernkontorets Bergshistoriska, Skriftserie (Sweden); Cautley, Proby Thomas, 1854, *Ganges Canal,* CEC Press, Roorkee; Aggrawal, Anil and Narayan, Sunita, *Dying Wisdom,* CSE, Delhi; Olschak, Blanche C., Gansser, Augusto, Buhrer, Emil M., 1987, *Himalayas,* New Delhi; Saklani, Pradeep M., *Nautiyal, Vinod and Nautiyal, K. P, 1999, Summer– Earthquake Resistant Structures in the Yamuna Valley, Garhwal, Himalaya, India, in South Asian Studies, Volume 15; Bisht, Krishna, 2002, Recarving the Wood- Report on the History and Revival of Wood Carving in Uttaranchal, Delhi*
14. Robertson, George S., 1987 (1896), *The Kafirs of the Hindu-Kush*, Karachi; Srivastav, S.K, 1958, *The Tharus - A Study in Culture Dynamics,* Agra; Loude, Jean Yves/Lievre Viviane, n.d., *Kalash Solstice*, Islamabad; Peissel, Michel, 1992 (1967), Mustang– A Lost Tibetan Kingdom, Delhi; जोशी, प्रयाग, 1983, *बनराजियों की खोज में,* पहाड़ 1, नैनीताल_ Chand, Raghubir, 2004, *Brokpas- The Hidden Highlanders of Bhutan*, Nainital
15. पाठक, शेखर, 2003, माता हिमालय पिता हिमालय, बहुवचन 11, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्व विद्यालय, दिल्ली / वर्धा

16. Atkinson, E.T. 1882-86, *The Himalayan Districts of the North Western Provinces of India,* Three Vols., Allahabad, Government Press. (Reprint, New Delhi– Cosmo, 1973)

17. See for details– Atkinson, Vol II, Part II; Sax, William S., 1991, *Mountain Goddess– Gender and Politics in a Himalayan Pilgrimage,* New York, OUP

18. हटवाल, नन्दकिशोर, सुयाल, निरंजन तथा भट्ट, चन्द्र शेखर, 2000, *नन्दादेवी राजजात संबंधी लेख,* पहाड़ 11, नैनीताल; हटवाल, नन्दकिशोर तथा बैंजवाल, रमाकान्त, 2000, *मध्य हिमालय में उत्सव और जात परम्परा– नन्दा राजजात 2000,* प्रयास, गोपेश्वर

19. Thakur, Laxaman S., 1996, *The Architectural Heritage of Himachal Pradesh,* New Delhi; Handa, O.C., 1994, *Tabo– Monastery and Buddhism in Western Himalaya,* Delhi; Francke, A.H., 1914, *Antiquities of Indian Art,* A.S.I. N.I.S., Vol. XXXVIII, Calcutta; Lama Anagarika, Govinda, 1966, *The Way of the White ClouosQ,* London; Singh, Mian Goverdhan, 1983, *Art and Architecture of Himachal Pradesh,* Delhi; Vitali, Robert, 2002, *RecorosQ of the Tholing– A Literary and Visual Reconstruction of the Mother Monastery in Guge,* High Asia, McLeod Ganj

20. Tucci, Giuseppe, 1932-41, *Indo Tibetica,* 7 Vols, Rome; Tucci, Giuseppe, 1973, *Archaeologia Mvnd Transhimalaya,* Delhi; Snelling, John, 1990, *The Sacred Mountain,* London; Jain, Madhu, 1995, *The Abode of Mahashiva– Cults and Symbology in Jaunsar-Bawar in Mid- Himalayas*, Indus, Delhi; Alter, Stephen, 2001, *Secred Waters– A Pilgrimage to the Many Sources of Ganga,* Penguin, Delhi; शर्मा, डी.डी., 2006, *हिमालय के खश* – अध्याय 8; जौनसारी, रतन सिंह 2006, *जौनसार बावर–एक सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अध्ययन,* गीतांजलि, देहरादून।

21. Pranavanand, Swami, 1949, Kailas-Manasarovar, Calcutta; Pranavanand, Swami 1950, Exploration in Tibet, Calcutta; पाठक, शेखर, 2001, बादल को घिरते देखा है, बहुवचन-7; पाठक, शेखर, 2009, नीले बर्फ़ीले स्वप्नलोक में, दिल्ली

22. बिजल्वाण, आशा राम 2003, रवाँई का समग्र इतिहास, कुमाऊँ वि.वि. का अप्रकाशित शोध प्रबंध

23. Majumdar, D.N., 1946, *Himalayan Polyandry,* Bombay; Parmar, Y.S., 1975, *Polyandry in the Himalayas*, Delhi.

24. Sherring, C.A., 1906, *Western Tibet and British Borderland,* Allahabad; Haimendorf, C.F. 1955, *Himalayan Barbary,* London; Srivastav, S.K, 1958, *The Tharus - A Study in Culture Dynamics, Agra;* डबराल, शिव प्रसाद, 1964-68, *उत्तराखंड का इतिहास,* खंड एक तथा दो, दोगडा; जोशी, प्रयाग, 1983, *बनराजियों की खोज में,* पहाड़-1, नैनीताल; पांगती, एस.एस, 1992, *मध्य हिमालय की भोटिया जनजाति: जोहार के शौका,* दिल्ली_ Joshi, L.D., 1929, *The Khasa Family Law in the Himalayan Districts of the United Provinces of India*, Allahabad; Majumdar, D.N., 1944, *The Fortunes of Primitive Tribes*, Lucknow

25. Grierson, G.A., 1916, Linguistic Survey of India, Relevant Volumes (I and IX), Calcutta; Bailey, T.G., 1920, Linguistic Studies from the Himalayas, London; जोशी, हरि शंकर, 1964, *प्रतिभा दर्शन,* बनारस; Sharma, D.D., 1983, *Linguistic History of Uttarakhand,* Hoshiarpur; Sharma, D.D., 1985/1987, *The Formation of Kumauni Language,* 2 Volumes, New Delhi; Sharma, D.D., 1989/1990, *Tibeto Himalayan*

*Languages of Uttarakhand*, 2 Volumes, New Delhi, Sharma, D.D., 1988, *A Descriptive Grammar of Kinnauri*, Delhi; रुवाली, केशवदत्त, 1996, *कुमाऊँनी-हिंदी व्युत्पत्तिकोश*, ग्रन्थायन, अलीगढ़; चातक, गोविन्द, 2000, *मध्य पहाड़ी की भाषिक परम्परा और हिंदी*, तक्षशिला, दिल्ली; भट्ट, बसन्त बल्लभ, 2000, *कूर्मांचल में संस्कृत वाङ्मय का विकास*, प्रेम ग्रन्थ भनार, टनकपुर; बिष्ट, शेर सिंह, 2005, *कुमाऊँ हिमालय की बोलियों का सर्वेक्षण*, इण्डियन पब्लिशर्स, दिल्ली। दुनिया, भारत तथा हिमालय की लुप्त होती भाषाओं पर देखें- Moseley, Christopher (Ed.), 2010 (1996), *Atlas of the World's Languages in Danger*, UNESCO, Paris.

26. Corbett, Jim, 1996 (1991), The Man Eating Leopard of Rudraprayag, The Jim Corbett Omnibus, OUP, Delhi; Allen, Charles, 1992 (1982), A Mountain in Tibet, Delhi; डबराल, शिव प्रसाद, 1960, श्री उत्तराखंड यात्रा दर्शन, नारायणकोटी; वैष्णव, शालिग्राम, 2010 (1926), उत्तराखंड रहस्य, नैनीताल; Alter, Stephen, 2001, Secred Waters: A Pilgrimage to the Many Sources of Ganga, Penguin, Delhi
27. पूरे हिन्दुकुश-हिमालय क्षेत्र में 39 प्रतिशत में चरागाह, 21 में जंगल, 11 में संरक्षित क्षेत्र तथा 5 में खेती है। इस क्षेत्र में 47 से 83 प्रतिशत लोगों की आय 2 अमेरिकी डालर तथा 17 से 36 प्रतिशत की आय 1 डालर प्रतिदिन है (Sharma, Eklabya., 2004, *ICIMOD News Letter 45*, Kathmandu). भारतीय हिमालय में प्रति व्यक्ति खेती की जमीन 0.29 हैक्टर है (Ya, Tang and Tulachan, Pradeep M. (Eds), 2003, *Mountain Agriculture in the HKH Region*, ICIMOD, Kathmandu: 7)
28. इस समय हिमालय (भारत, पाकिस्तान, नेपाल तथा भूटान) में कुल 552 जल विद्युत परियोजनाएँ काम कर रही हैं और 212283 निर्माणाधीन हैं (देखें– श्रीपाद धर्माधिकारी, 2009)।
29. Stone, Peter B. (Ed.), 1992, *The State of the Worlds' Mountains,* London; Ives, Jack and Misereli, B., 1989, *Himalayan Delemma*, London; Subba, Bhim, 2001, *Himalayan Waters*, Kathmandu; Gyawali, Dipak, 2001, *Water in Nepal*, Kathmandu; Moench, Marcus, Cspari, Elisbeth and Dixit, Ajaya (Eds.), 1999, *Rethinking the Mosaic*, Kathmandu.
30. Brandis, Dietrich, 1994 (1897), *Forestry in India*, Dehradun; Ribbentrop, Berthold, 1989 (1900), *Forestry in British India*, New Delhi; Pant, Govind Ballabh, 1922, *The Forest Problem in Kumaon,* Allahabad; Guha, Ramachandra, 1989, *The Unquiet Woods - Economic Change and Peasent Resistance in the Himalaya,* Delhi; Grove, Richard H.; Damodaran, Vinita and Sangwan, Satpal (Eds), 2000 (1998), *Nature and the Orient– The Environmental History of South and Southeast Asia,* Delhi; Pouchepadass, Jacques, 1995, *Colonialism and Environment in India:Comparative Perspective,* Economic and Political Weekly, 19 August, Bombay; Shiva, V. and Bandyopadhyay, 1986, *India's Civilisational Response to the Forest Crisis,* New Delhi; Singh, J.S.and Singh, S.P., 1994, *The Forests of Himalaya,* Nainital; Pathak, Shekhar, 2001, *Jungle Satyagraha* in Rawat, Ajay S. (Ed.), *Forest History of the Mountain Regions of the World:* 222-241, Nainital; *State of India's Forests 2005,* FSI, Dehradun.FSI, Dehradun
31. Stone, Peter B. (Ed.), 1992, *The State of the Worlds' Mountains*, London
32. Maikhuri, R.K. & others, 1997, *Eroding Traditional Crop Diversity Imperils the Sustainability of Agricultural Systems in Central Himalaya,* Current Science, 10

November – 777-781, Bangalore; कुँवर प्रसून, 1995, *बीजों की विरासत,* जाजल (टिहरी); जरधारी, विजय, 2007, *बारहनाजा–समृद्धशाली पारम्परिक कृषि विज्ञान,* रायगढ़

33. Ramakrishnan, P.S. et el (Ed.), 1998, *Conserving the Sacred For Biodiversity Management,* New Hampshire; Bhatia, Anupam (Ed.), 2000, *Participatory Forest Management– Implications for Policy and Human Resources Development in the Hindu Kush- Himalayas,* IV Volumes, Kathmandu; Gadgil, Madhav and Guha, Ramachandra, 1995, *Ecology and Equity,* New Delhi; Dhar, Upeandra (Ed.), 1993, *Himalayan Biodiversity– Conservation Strategies,* Almora; *State of the Forests 2001, 2003, 2005*, FSI, Dehradun; Pathak, Shekhar and Ghildiyal, Sanjay, 2007, *Biodiversity– A Basic Tourism Resource*, in Tourism and Himalayan Biodiversity, (Eds) Bisht, Harshvanti and Rajwar, Govind, Srinagar: 1-14

34. Walia, Ramesh, 1972, *Prajamandal Movements in East Punjab States,* Patiala; पाठक, शेखर, 1987, *उत्तराखंड में कुली बेगार प्रथा,* दिल्ली; Guha, Ramachandra, 1989, *The Unquiet Woods - Economic Change and Peasent Resistance in the Himalaya*, Delhi; पाठक, शेखर, 1998, *सरफ़रोशी की तमन्ना – उत्तराखंड में स्वाधीनता संग्राम का दृश्य इतिहास,* नैनीताल; Koirala, Bishweshwar Prasad (tr. Kanak mani Dixit), 2001, *Atmavrittanta– Late Life Recollections,* Lalitpur; Saklani, Atual, 1987, *The History of a Himalayan Princely State,* Delhi; Rawat, Ajay S., 2002, *Garhwal Himalaya: A Study in Historical Perspective,* Delhi; Verghese, B.G., 1996, *India's Northeast Resurgent,* Delhi; Misra, Udayon, 1988, *North-East India: Quest for Identity,* Guwahati.